जैन-धर्म-परम्परा : एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण

[भगवान ऋषभदेव से लोंकाशाह]

—देवेन्द्र मुनि शास्त्री

ऋषभदेव—जैनधर्म विश्व का एक प्राचीनतम धर्म है। प्रस्तुत अवसर्पिणीकाल में इस धर्म के आद्य संस्थापक भगवान ऋषभदेव हैं। जैन, बौद्ध और वैदिक तीनों ही परम्पराओं में वे उपास्य के रूप में रहे हैं। उनका तेजस्वी व्यक्तित्व और कृतित्व जन-जन के आकर्षण का केन्द्र रहा है। आधुनिक इतिहास से उनकी ऐतिहासिकता सिद्ध नहीं हो सकती क्योंकि वे प्रागैतिहासिक युग में हुए। उनके पिता का नाम नाभि और माता का नाम मरुदेवा था। उनका पाणिग्रहण सुमंगला और सुनन्दा के साथ हुआ। सुमंगला ने भरत और ब्राह्मी तथा अन्य अठानवें पुत्रों को जन्म दिया और सुनन्दा ने बाहुबली और सुन्दरी को। कुलकर व्यवस्था का अन्त होने पर वे राजा बने, राजनीति का प्रचलन किया, खेती आदि की कला सिखाकर खाद्य-समस्या का समाधान किया; अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को बहत्तर कलाएँ, और कनिष्ठ पुत्र बाहुबली को प्राणी-लक्षणों का ज्ञान कराया; और ब्राह्मी को अठारह लिपियों का तथा सुन्दरी को गणित विद्या का परिज्ञान कराया। असि-मसि और कृषि की व्यवस्था की। वर्ण-व्यवस्था की संस्थापना की। अन्त में भरत को राज्य देकर चार हजार व्यक्तियों के साथ दीक्षा ग्रहण की। जनता श्रमणचर्या के अनुसार भिक्षा देने की विधि से एक संवत्सर तक भिक्षा नहीं मिली। उसके पश्चात् उनके पौत्र श्रेयास ने इक्षुरस की भिक्षा दी जिससे इक्षु तृतीया या अपरिचित थी, अतः अक्षय तृतीया पर्व का प्रारम्भ हुआ। एक हजार वर्ष के पश्चात् उनको केवलज्ञान हुआ। संघ की संस्थापना की। उनके पुत्र भरत के नाम से भारतवर्ष का नामकरण हुआ। भरत को आदर्श महल में केवलज्ञान हुआ। उनके अन्य सभी पुत्र और पुत्रियाँ भी साधना कर परिनिर्वाण को प्राप्त हुईं और माघ कृष्णा त्रयोदशी के दिन ऋषभदेव ने भी अष्टापद पर्वत पर शिवगति प्राप्त की जिससे शिवरात्रि विश्रुत हुई।[1]

बाईस तीर्थंकर—भगवान ऋषभदेव के पश्चात् अजित, सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, सुविधि, (पुष्पदन्त), शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, शान्ति, कुन्थु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्वनाथ—ये बाईस तीर्थंकर हुए।

अरिष्टनेमि—भगवान अरिष्टनेमि और भगवान पार्श्व—इन दोनों की आधुनिक विद्वान ऐतिहासिक महापुरुष मानते हैं। अरिष्टनेमि श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे। ऋग्वेद आदि में उनके नाम का उल्लेख मिलता है। यजुर्वेद, सामवेद, छान्दोग्योपनिषद्, महाभारत, स्कंदपुराण, प्रभासपुराण आदि में भी उनके अस्तित्व का संकेत मिलता है। मांस के लिए मारे जाने वाले प्राणियों की रक्षा हेतु उन्होंने उग्रसेन नरेश की पुत्री राजीमती के साथ विवाह करने से इनकार किया और स्वयं गृह त्यागकर श्रमण बने, केवलज्ञान प्राप्त कर रैवताचल (गिरिनार) पर मुक्त हुए। मांसाहार के विरोध में जो उन्होंने अभियान प्रारम्भ किया वह इतिहास के पृष्ठों में आज भी चमक रहा है। वासुदेव श्रीकृष्ण उनके परम भक्तों में से थे।[2]

पार्श्वनाथ—भगवान पार्श्वनाथ वाराणसी के राजकुमार थे। उनके पिता का नाम अश्वसेन और माता का नाम वामादेवी था। आपका जन्म ई. पू. ८५० में पौषकृष्णा दशमी को हुआ था। आपके युग में तापस परम्परा में विविध प्रकार की विवेकशून्य क्रियाएँ प्रचलित थीं। गृहस्थावस्था में ही पंचाग्नि तप तपते हुए कमठ को अहिंसा का पावन उपदेश दिया और धूनी के लक्कड़ में से जलते हुए सर्प का उद्धार किया। श्रमण बनने के पश्चात् उग्र साधना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर सर्वज्ञ बने और विवेकमूलक धर्म-साधना का प्रचार किया और अन्त में सम्मेदशिखर (बिहार प्रान्त) पर परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। पाश्चात्य और पौर्वात्य सभी विद्वानों ने भगवान पार्श्व की ऐतिहासिकता को स्वीकार किया है। अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा के अनुसार तथागत बुद्ध के चाचा बप्प निर्ग्रंथ श्रावक थे। धर्मानन्द कोशांबी का अभिमत है कि बुद्ध ने अपने साधक जीवन के प्रारम्भिक काल में भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा को अपनाया था। आगम साहित्य में पार्श्वनाथ के लिए पुरुषादानीय, लोकपूजित, संबुद्धात्मा सर्वज्ञ एवं लोकप्रदीप जैसे विशिष्ट विशेषण देकर उनके तेजस्वी व्यक्तित्त्व को उजागर किया गया है।[३]

महावीर—भगवान महावीर विश्व-इतिहास गगन के तेजस्वी सूर्य थे। ई. पू. छठी शताब्दी में वैशाली के उपनगर क्षत्रियकुण्ड में चैत्र सुदि त्रयोदशी को आपका जन्म हुआ। आपके पिता का नाम राजा सिद्धार्थ और माता का नाम रानी त्रिशला था। धन-धान्य की अभिवृद्धि के कारण उनका नाम वर्द्धमान रखा गया। उनके बड़े भाई का नाम नन्दिवर्द्धन, बहन का नाम सुदर्शना और विदेह गणराज्य के मनोनीत अध्यक्ष चेटक उनके मामा थे। वसन्तपुर के महासामन्त समरवीर की पुत्री यशोदा के साथ उनका पाणिग्रहण हुआ और प्रियदर्शना नामक एक पुत्री हुई जिसका पाणिग्रहण जमाली के साथ हुआ।

अट्ठाईस वर्ष की आयु में माता-पिता के स्वर्गस्थ होने पर संयम ग्रहण करना चाहा, किन्तु ज्येष्ठ भ्राता नन्दीवर्द्धन के अत्याग्रह से वे दो वर्ष गृहस्थाश्रम में और रहे। तीस वर्ष की अवस्था में गृहवास त्यागकर एकाकी निर्ग्रंथ मुनि बने। उग्रतप की साधना की। देव-दानव-मानव पशुओं के द्वारा भीषण कष्ट देने पर भी प्रसन्न मन से उसे सहन किया। अन्य तीर्थंकरों की अपेक्षा महावीर का तपःकर्म अधिक उग्र था। साधना करते हुए बारह वर्ष बीते। तेरहवाँ वर्ष आया, वैशाख महीना था, शुक्लपक्ष की दशमी के दिन अन्तिम प्रहर में साल वृक्ष के नीचे गोदोहिका आसन से आतापना ले रहे थे, तब केवलज्ञान-केवलदर्शन प्रकट हुआ। वहाँ से विहार कर पावापुरी पधारे। वहाँ सोमिल ब्राह्मण ने विराट यज्ञ का आयोजन कर रखा था जिसमें इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त, सुधर्मा, मण्डितपुत्र, मौर्यपुत्र, अकंपित, अचलभ्रात, मैतार्य, प्रभास ये ग्यारह वेदविद् ब्राह्मण आये हुए थे। उनके तर्कों का निरसन कर उन्हें अपने शिष्य बनाया, साथ ही चार हजार चार सौ उनके विद्वान शिष्यों ने भी दीक्षा ग्रहण की। भगवान ने उन्हीं ग्यारह विज्ञों को गणधर के महत्वपूर्ण पद पर नियुक्त किया। श्रमण-श्रमणी, श्रावक-श्राविका इस चतुर्विध तीर्थ की स्थापना कर तीर्थंकर बने। भगवान के संघ में चौदह हजार श्रमण, छत्तीस हजार श्रमणियाँ थीं। एक लाख उनसठ हजार श्रावक और तीन लाख अठारह हजार श्राविकाएँ थीं। भगवान के त्यागमय उपदेश को श्रवण कर वीरांगक, वीरयश, संजय, एणेयक, सेय, शिव, उदयन और शंख—काशीवर्धन आदि आठ राजाओं ने श्रमण धर्मग्रहण किया था। सम्राट श्रेणिक के तेईस पुत्रों और तेरह रानियों ने दीक्षा ग्रहण की। धन्ना और शालिभद्र जैसे धन-कुबेरों ने भी संयम स्वीकार किया। आर्द्रकमार जैसे आर्येतर जाति के युवकों ने, हरिकेशी जैसे चाण्डाल जातीय मुमुक्षुओं ने और अर्जुन मालाकार जैसे क्रूर नरहत्यारों ने भी दीक्षा ग्रहण की।

गणराज्य के प्रमुख चेटक महावीर के मुख्य श्रावक थे। उनके छह जामाता उदायन, दधिवाहन, शतानीक, चण्डप्रद्योत, नन्दिवर्द्धन, श्रेणिक तथा नौ मल्लवी और नौ लिच्छवी के अठारह गणनरेश भी भगवान के परमभक्त थे। केवलज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् तीस वर्ष तक काशी, कोशल, पांचाल, कलिंग, कम्बोज, कुरुजांगल, बाह्लीक, गान्धार, सिन्धुसौवीर प्रभृति प्रान्तों में परिभ्रमण करते हुए भव्य जीवों को प्रतिबोध देते हुए अन्तिम वर्षावास मध्यम-पावा में सम्राट हस्तिपाल की रज्जुक सभा में किया। कार्तिक कृष्णा अमावास्या की रात्रि में स्वाती नक्षत्र के समय बहत्तर वर्ष की आयु पूर्ण कर परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। निर्वाण के समय नौ मल्लवी नौ लिच्छवी गणों के अठारह राजा उपस्थित थे जिन्होंने भावउद्योत के चले जाने पर द्रव्यउद्योत किया, तभी से भगवान महावीर की स्मृति में दीपावली महापर्व मनाया जाता है।[४]

इन्द्रभूति गौतम—भगवान महावीर के प्रधान शिष्य थे इन्द्रभूति गौतम। वे राजगृह के सन्निकट गोबर ग्राम के निवासी थे।[५] उनके पिता का नाम वसुभूति और माता का नाम पृथ्वी था। उनका गोत्र गौतम था।[६] वे घोर तपस्वी, चौदह पूर्व के ज्ञाता, चतुर्ज्ञानी, सर्वाक्षर सन्निपाती, तेजस्लब्धि के धर्ता और अनेक लब्धियों के भण्डार थे।[७] जैन आगम साहित्य का मुख्य भाग महावीर और गौतम के संवाद के रूप में है। गौतम प्रश्न करने वाले हैं और महावीर उत्तर देने वाले हैं। जो स्थान उपनिषद् में उद्दालक के सामने श्वेतकेतु का है, त्रिपिटक में बुद्ध के सामने आनन्द का है और गीता में कृष्ण के सामने अर्जुन का है वही स्थान आगम में महावीर के सामने गौतम का है। गौतम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के अन्तर्मानस में भगवान महावीर के प्रति अनन्य आस्था थी। नम्रता की वे साक्षात् प्रतिमूर्ति थे। सत्य को स्वीकार करने में उन्हें किंचित्मात्र भी संकोच नहीं था। उनमें उपदेश देने की शक्ति भी विलक्षण थी। भगवान महावीर ने पृष्ठचम्पा के गांगील नरेश को प्रतिबोध देने हेतु उन्हें प्रेषित किया था। उन्होंने १५०३ तापसों को प्रतिबोध देकर श्रमणधर्म में दीक्षित किया था।[८] भगवान पार्श्वनाथ के अनुयायी केशीश्रमण तथा उदकपेढ़ाल आदि सैकड़ों शिष्यों को महावीर के संघ में सम्मिलित करने का श्रेय भी उन्हें था।[९]

श्रमण भगवान महावीर के संघ के संचालन का सम्पूर्ण भार गौतम के कन्धों पर था। भगवान महावीर के परिनिर्वाण होने पर उन्हें केवलज्ञान हुआ और उन्होंने संघ संचालन का कार्य गणधर सुधर्मा को सौंप दिया और वे बारह वर्ष तक जीवनमुक्त केवली अवस्था में रहे। उन्होंने पचास वर्ष की आयु में दीक्षा ली, तीस वर्ष छद्मस्थ अवस्था में रहे और बारह वर्ष केवली रहे। बयानवे वर्ष की उम्र में गुणशील चैत्य में मासिक अनशन व्रत करके परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।[१०]

(१) **गणधर सुधर्मा**—ये कोल्लागसन्निवेश के निवासी अग्निवेश्यायन गोत्रीय ब्राह्मण थे। आपके पिता का नाम धम्मिल और माता का नाम भद्दिला था। आपके पास पाँच सौ छात्र अध्ययन करते थे। पचास वर्ष की अवस्था में शिष्यों के साथ प्रव्रज्या ली, बयालीस वर्ष छद्मस्थ अवस्था में रहे। महावीर के निर्वाण के बाद बारह वर्ष होने पर केवली हुए और आठ वर्ष तक केवली अवस्था में रहे। भगवान महावीर के सभी गणधरों में सुधर्मा दीर्घजीवी थे। अतः अन्य सभी गणधरों ने निर्वाण के समय अपने-अपने गण सुधर्मा को समर्पित किये थे।[११] सौ वर्ष की अवस्था में मासिक अनशनपूर्वक राजगृह के गुणशील चैत्य में निर्वाण प्राप्त किया।[१२] दिगंबर परम्परा सुधर्मा स्वामी का निर्वाण विपुलाचल पर होना मानती है।

(२) **आर्य जम्बू**—श्रमण भगवान महावीर के परिनिर्वाण के सोलह वर्ष पूर्व मगध की राजधानी राजगृह में जम्बू का जन्म हुआ। उनके पिता का नाम ऋषभदत्त और माता का नाम धारिणी था। ये अपने पिता के इकलौते पुत्र थे। सोलह वर्ष की उम्र में आठ कन्याओं के साथ उनका पाणिग्रहण हुआ। दहेज में निन्यानवे करोड़ का धन मिला। किन्तु सुधर्मा स्वामी के उपदेश को श्रवण कर बिना सुहागरात मनाये ही अपार वैभव का परित्याग कर सुधर्मा के चरणों में दीक्षा ग्रहण की। जम्बू के साथ उनके माता-पिता आठों पत्नियाँ, उनके भी माता-पिता, तस्करराज प्रभव, और उसके पाँच सौ साथी चोर इस प्रकार पाँच सौ सत्ताइस व्यक्तियों ने एक साथ दीक्षा ग्रहण की। बारह वर्ष तक सुधर्मा स्वामी से आगम की वाचना प्राप्त करते रहे। वीर निर्वाण सं० १ में दीक्षा ग्रहण की, वीर सं० १३ में सुधर्मा स्वामी के केवलज्ञानी होने के पश्चात् उनके पट्ट पर आसीन हुए। आठ वर्ष तक संघ का नेतृत्व कर वीर सं० २० में केवलज्ञान प्राप्त किया और वीर सं० ६४ में अस्सी वर्ष की आयु पूर्ण कर मथुरा में निर्वाण हुआ। आज जो आगम उपलब्ध हैं उसका सम्पूर्ण श्रेय जम्बू को है। जम्बू के मोक्ष पधारने के पश्चात् निम्न दस बातें विच्छिन्न हो गईं—

१. मनःपर्यवज्ञान।
२. परमावधिज्ञान।
३. पुलाक लब्धि।
४. आहारक शरीर।
५. क्षपक श्रेणी।
६. उपशम श्रेणी।
७. जिनकल्प।
८. संयमत्रिक् (परिहारविशुद्धचारित्र, सूक्ष्मसम्परायचारित्र, यथाख्यातचारित्र)।
९. केवलज्ञान।
१०. सिद्धपद।[१३]

(३) **आर्य प्रभवस्वामी**—आर्य प्रभव विन्ध्याचल के समीपवर्ती जयपुर के निवासी थे। पिता का नाम विन्ध्य राजा था। पिता से अनबन हो जाने के कारण अपने पाँच सौ साथियों के साथ राज्य का परित्याग कर जंगल में निकल पड़े और तस्करराज बन गये। जिस दिन जम्बूकुमार का विवाह था उसी दिन वे डाका डालने के लिए उनके घर पहुँचे। प्रभव के पास दो विद्याएँ थीं—तालोद्घाटिनी (ताला तोड़ने की) एवं अवस्वापिनी (नींद दिलवाने की)। उन विद्याओं के प्रभाव से सभी सदस्यगण सो गये किन्तु जम्बू अपनी नव-परिणीता पत्नियों के साथ संयम की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चर्चा कर रहे थे जिसे सुन प्रभव विरक्त हो गये और तीस वर्ष की अवस्था में प्रव्रज्या ग्रहण की। पचास वर्ष की अवस्था में जम्बू के केवलज्ञानी होने पर आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए और एक सौ पाँच वर्ष की उम्र में अनशन कर स्वर्गवासी हुए।

(४) **आर्य शय्यंभव**—आर्य प्रभव के स्वर्गस्थ होने पर शय्यंभव उनके पट्ट पर आसीन हुए। वे राजगृह के निवासी वत्स गोत्रीय ब्राह्मण थे। एक समय वे यज्ञ कर रहे थे। आर्य प्रभव के आदेशानुसार कुछ शिष्य उनके समीप आये और यह कहा—**अहो कष्टमहो कष्टं पुनस्तत्त्वं न ज्ञायते** (अत्यन्त परिताप है, तत्त्व को कोई नहीं जानता।) इस वाक्य से वे जागृत हुए। उन्होंने मुनियों से पूछा तत्त्व क्या है? शिष्यों ने कहा—यदि तत्त्व जानना है तो हमारे गुरु के पास चलो। वे प्रभवस्वामी के पास पहुँचे और उनके प्रवचन से प्रबुद्ध होकर प्रव्रज्या ग्रहण की। चतुर्दश पूर्वों का अध्ययन किया। जब उन्होंने प्रव्रज्या ग्रहण की थी तब उनकी पत्नी सगर्भा थी। पश्चात् पुत्र हुआ। मनक नाम रखा। मनक ने चम्पानगरी में आपके दर्शन किये। मुनि बना। छह माह का अल्पजीवी समझकर पुत्र को श्रमणाचार का सम्यक् परिज्ञान कराने हेतु दशवैकालिक का निर्माण किया। इन्होंने अट्ठाइस वर्ष की उम्र में प्रव्रज्या ग्रहण की। चौतीस वर्ष सामान्य मुनि-अवस्था में रहे और तेईस वर्ष युगप्रधान आचार्य पद पर। वीर निर्वाण संवत् ९८ में पचासी वर्ष आयु पूर्ण कर स्वर्गस्थ हुए।

(५) **आर्य यशोभद्र**—ये आर्य शय्यंभव के प्रधान शिष्य थे। तुंगियायन गोत्रीय ब्राह्मण थे। बाइस वर्ष की अवस्था में दीक्षा ग्रहण की, चौदह वर्ष मुनि-अवस्था में रहे और पचास वर्ष युगप्रधान आचार्य पद पर। ये वीर सं० १४८ में छियासी वर्ष पूर्ण कर स्वर्गस्थ हुए।

(६) **आर्य संभूतिविजय**—यशोभद्र के दो उत्तराधिकारी हुए—आर्य संभूतिविजय और आर्य भद्रबाहु। आर्य संभूतिविजय माठर गोत्रीय थे। वे बयालीस वर्ष गृहस्थाश्रम में रहे, चालीस वर्ष साधु अवस्था में, आठ वर्ष युगप्रधान आचार्य के पद पर। कुल नब्बे वर्ष की उम्र में वीर निर्वाण संवत् १५६ में स्वर्गस्थ हुए।

(७) **आर्य भद्रबाहु**—ये जैन संस्कृति के ज्योतिर्धर आचार्य थे। जैन साहित्य सर्जना के आदि पुरुष हैं। आगम व्याख्याता, इतिहासकार और साहित्य के सर्जक के रूप में इनका नाम प्रथम है। आपका जन्म प्रतिष्ठानपुर में हुआ। पैंतालीस वर्ष की वय में आचार्य यशोभद्र के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। चौदह वर्ष तक युगप्रधान आचार्य पद पर रहे। वीर सं १७० में छिहत्तर वर्ष की आयु में स्वर्गस्थ हुए।

आर्य प्रभव से प्रारंभ होने वाली श्रुतकेवली परम्परा में भद्रबाहु पंचम श्रुतकेवली हैं। चतुर्दश पूर्वधर हैं। उनके पश्चात् कोई भी श्रमण चतुर्दशपूर्वी नहीं हुआ। दशाश्रुतस्कंध, बृहत्कल्प, व्यवहार,[१४] कल्पसूत्र, आवश्यकनिर्युक्ति, आदि दस निर्युक्तियाँ आपकी रचित मानी जाती हैं। किन्तु कितने ही विद्वान निर्युक्तियों को रचना द्वितीय भद्रबाहु की मानते हैं। उवसग्गहर स्तोत्र[१५] आपकी ही रचना है। आगमों की प्रथम वाचना पाटलिपुत्र में आपके द्वारा ही सम्पन्न हुई।[१६] उस समय आप नेपाल में महाप्राणध्यान की साधना कर रहे थे। संघ के आग्रह को सम्मान देकर स्थूलभद्र मुनि को बारहवें अंग की वाचना देना स्वीकार किया। दस पूर्व अर्थ सहित सिखाये। ग्यारहवें पूर्व की वाचना के समय आर्य स्थूलभद्र ने बहनों को चमत्कार दिखाया; अतः वाचना बन्द की। किन्तु संघ के आग्रह से अंतिम चार पूर्वों की वाचना दी, किन्तु अर्थ नहीं बताया और दूसरों को उसकी वाचना देने की स्पष्ट मनाई की।[१७] अर्थ की दृष्टि से अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहु हैं। स्थूलभद्र शाब्दिक दृष्टि से चौदहपूर्वी थे, पर अर्थ की दृष्टि से दसपूर्वी थे। मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त आपके अनन्य भक्त थे। उनके द्वारा देखे गये सोलह स्वप्नों का फल आपने बताया जिसमें पंचम काल की भविष्यकालीन स्थिति का रेखा चित्रण था। श्वेतांबर और दिगंबर दोनों ही परम्परा आपके प्रति पूर्ण श्रद्धाभाव रखती हैं। वीर निर्वाण संवत् १७० में आपका स्वर्गवास हुआ।

वीर निर्वाण १७० के पश्चात् आर्य भद्रबाहुस्वामी के शिष्य काश्यप गोत्रीय स्थविर गोदास से गोदासगण प्रारम्भ हुआ जो ताम्रलिप्तिया (ताम्रलिप्तिका), कोडीवरिसिया (कोटिवर्षीया), पोंडवद्धणिया (पौण्ड्रवर्धनिका) और दासी खब्बडिया (दासी-कर्पटिका) इन चार शाखाओं में विभाजित हो गया।

(८) **आर्य स्थूलभद्र**—ये जैन जगत के उज्ज्वल नक्षत्र हैं। मंगलाचरण के रूप में उनका स्मरण किया जाता है। ये पाटलीपुत्र के निवासी थे। इनके पिता का नाम शकडाल था जो नन्द महाराजा के महामंत्री थे। स्थूलभद्र के लघु भ्राता का नाम श्रेयक था। यक्षा, यक्षदत्ता, भूता, भूतदत्ता, सेणा, वेणा और रेणा ये सातों ही आर्य स्थूलभद्र की सगी बहनें थीं। स्थूलभद्र जब यौवन की चौखट पर पहुँचे तब कोशा गणिका के रूपजाल में फँस गये। महापण्डित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वररुचि के षड्यन्त्र से विवश होकर पिता की इच्छानुसार श्रेयक ने पिता को मार दिया। पिता के अमात्य पद को ग्रहण करने के लिए स्थूलभद्र से कहा गया, किन्तु पिता की मृत्यु से उन्हें वैराग्य हो गया, उन्होंने आचार्य संभूतिविजय के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। प्रथम वर्षावास के समय एक मुनि ने सिंह गुफा पर चातुर्मास की अनुमति माँगी। दूसरे ने दृष्टिविष सर्प की बांबी पर। तीसरे ने कुँए के कोठे पर और स्थूलभद्र ने कोशा की चित्रशाला में। स्थूलिभद्र कोशा के यहाँ पहुँचे। वासना का वातावरण था। कोशा वेश्या ने हाव-भाव और विलास से स्थूलभद्र को चलित करने का प्रयास किया किन्तु वे चलित न हुए। अन्त में वेश्या स्थूलभद्र के उपदेश से श्राविका बन गयी।

वर्षावास पूर्ण होने पर सभी शिष्य गुरु के चरणों में पहुंचे। तीनों का दुष्करकारक तपस्वी के रूप में स्वागत किया। स्थूलिभद्र के आने पर गुरु, सात-आठ कदम उनके सामने गये और दुष्कर-दुष्कर-कारक तपस्वी के रूप में उनका स्वागत किया। सिंह गुफावासी मुनि यह देखकर क्षुब्ध हुआ। आचार्य ने ब्रह्मचर्य की दुष्करता पर प्रकाश डाला किन्तु उसका क्षोभ शान्त न हुआ। द्वितीय वर्ष सिंह गुफावासी मुनि कोशा के यहाँ पहुँचा, किन्तु वेश्या का रूप देखते ही वह विचलित हो गया। वेश्या के कहने से वह रत्न-कंबल लेने हेतु नेपाल पहुँचा। वेश्या ने उस कंबल को गन्दी नाली में डालकर उसे प्रतिबोध दिया कि रत्नकंबल से भी संयम अधिक मूल्यवान है। सिंह गुफावासी मुनि को अपनी भूल मालूम हुई तथा गुरु के कथन का रहस्य भी ज्ञात हो गया। स्थूलभद्र का महत्व काम-विजेता के कारण ही नहीं, किन्तु पूर्वधर होने के कारण भी है। वीर सं० ११६ में इनका जन्म हुआ। तीस वर्ष की वय में दीक्षा ग्रहण की। चौबीस वर्ष तक साधारण मुनि पर्याय में रहे और पैंतालीस वर्ष युगप्रधान आचार्य पद पर। निन्यानबे वर्ष की उम्र में वैभारगिरि पर्वत पर पन्द्रह दिन का अनशन कर वीर सं० २१५ में स्वर्गस्थ हुए।

(६-१०) **आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ती**—आर्य स्थूलभद्र के पट्ट पर उनके शिष्यरत्न आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ती आसीन हुए। आर्य महागिरि उग्र तपस्वी थे। दस पूर्व तक अध्ययन करने के पश्चात् संघ संचालन का उत्तरदायित्व अपने लघु गुरुभ्राता सुहस्ती को समर्पित कर स्वयं साधना के लिए एकान्त में चले गये। आर्य महागिरि का जन्म वीर सं० १४५ में हुआ और दीक्षा १७५ में, २११ में आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए और २४५ में सौ वर्ष की आयु को पूर्ण कर दशार्णप्रदेशस्थ गजेन्द्रपुर तीर्थ में स्वर्गस्थ हुए। आर्य सुहाती का जन्म वीर सं० १६१ में हुआ, दीक्षा २१५ में हुई, आचार्य पद २४५ में और २६१ में सौ वर्ष की आयु पूर्ण कर स्वर्गस्थ हुए।[१९] आर्य सुहस्ती के समय अवन्ती निवासिनी भद्रा का पुत्र अवन्तीसुकुमाल, नलिनीगुल्म विमान का वर्णन सुनकर श्रमण बना और कंथार वन में शृगालिनी के उपसर्ग से मृत्यु को प्राप्त कर नलिनीगुल्म विमान में देव बना। आर्य सुहस्ती ने दुष्काल से ग्रसित द्रमक नामक भिखारी को प्रव्रज्या दी और समाधिपूर्वक आयु पूर्ण कर वह कुणाल पुत्र संप्रति हुआ। आर्य सुहस्ती के दर्शन कर उसे जातिस्मरण हुआ और वह जैनधर्मावलम्बी बना। उसका हृदय दयालु था। उसने सात सौ दानशालाएँ खुलवायीं। जैनधर्म के प्रचार के लिए अपने विशिष्ट अधिकारियों को श्रमण वेष में आन्ध्रादि प्रदेशों में भेजा।[२०]

(११-१२) **आर्य सुस्थित और आर्य सुप्रतिबद्ध**—आर्य सुहस्ती के बारह शिष्य थे। उनमें से आर्य सुस्थित और आर्य सुप्रतिबुद्ध ये दोनों आचार्य बने। ये दोनों काकन्दी नगरी के निवासी थे। राजकुलोत्पन्न व्याघ्रापत्य गोत्रीय सहोदर थे। कुमारगिरि पर्वत पर दोनों ने उग्रतप की साधना की। संघ संचालन का कार्य सुस्थित के अधीन था और वाचना का सुप्रतिबुद्ध के। हिमवन्त स्थविरावली के अनुसार इनके युग में कुमारगिरि पर एक लघु श्रमण सम्मेलन हुआ था और द्वितीय आगम वाचना भी हुई। इकतीस वर्ष की अवस्था में आर्य सुस्थित ने प्रव्रज्या ग्रहण की, सत्रह वर्ष तक सामान्य श्रमण रहे और अड़तालीस वर्ष तक आचार्य पद पर रहे और छियानवे वर्ष की अवस्था में वीर सं० ३३६ में कुमारगिरि पर्वत पर स्वर्गस्थ हुए। इसी तरह आर्य सुप्रतिबुद्ध का भी उसी वर्ष देहान्त हुआ।

आचार्य सुहस्ती तक के आचार्य गण के अधिपति और वाचनाचार्य दोनों ही होते थे। वे गण को संभालते भी थे और साथ ही गण की शैक्षणिक व्यवस्था भी करते थे। किन्तु आचार्य सुहस्ती के पश्चात गण की रक्षा करने वाले को गणाचार्य और श्रुत की रक्षा करने वाले को वाचनाचार्य कहा गया। गणाचार्यों की परम्परा गणधरवंश अपने अपने गण के गुरु-शिष्य क्रम से चलती रही। वाचनाचार्यों और युगप्रधान आचार्यों की परम्परा एक गण से सम्बन्धित नहीं है। जिस किसी भी गण में या शाखा में एक के पश्चात् दूसरे प्रभावशाली वाचनाचार्य या युगप्रधान हुए उनसे उनका क्रम संलग्न किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आर्य सुहस्ती के पश्चात भी कुछ आचार्य गणाचार्य और वाचनाचार्य दोनों हुए हैं। जो आचार्य प्रबल प्रतिभा के धनी थे उन्हें युगप्रधान माना गया है, वे गणाचार्य और वाचनाचार्य दोनों में से हुए हैं।

हिमवन्त स्थविरावलि की दृष्टि से वाचकवंश या **विद्याधरवंश की परम्परा** इस प्रकार है—

१. आचार्य सुहस्ती।
२. आचार्य बहुल और बलिस्सह।
३. आचार्य उमास्वाति।
४. आचार्य अमम।
५. आचार्य सांडिल्य या स्कंदिल (वि० सं० ३७६ से ४१४ तक युग-प्रधान)।
६. आचार्य समुद्र।
७. आचार्य मंगूसूरि।
८. आचार्य नन्दिलसूरि।
९. आचार्य नागहस्तीसूरि।
१०. आचार्य खेति नक्षत्र।
११. आचार्य सिंहसूरि
१२. आचार्य स्कंदिल (वि० सं० ८२६ वाचनाचार्य)।
१३. आचार्य हिमवन्त क्षमाश्रमण।
१४. आचार्य नागार्जुनसूरि।
१५. आचार्य भूतदिन्न।
१६. आचार्य लौहित्यसूरि।
१७. आचार्य दुष्यगणी।
१८. आचार्य देववाचक (देवर्धिगणी क्षमाश्रमण)।
१९. आचार्य कालिकाचार्य (चतुर्थ)।
२०. आचार्य सत्यमित्र (अन्तिम पूर्वविद्)।

दुस्सम-काल-समण-संघत्थव और विचार-श्रेणी के अनुसार '**युग-प्रधान-पट्टावलि**' और समय—

	आचार्यों के नाम	**समय** (वीर-निर्वाण से)
१.	गणधर सुधर्मास्वामी	१–२०
२.	आचार्य जम्बूस्वामी	२०–६४
३.	आचार्य प्रभवस्वामी	६४–७५
४.	आचार्य शय्यंभवसूरि	७५–९८
५.	आचार्य यशोभद्रसूरि	९८–१४८
६.	आचार्य संभूतिविजय	१४८–१५६
७.	आचार्य भद्रबाहुस्वामी	१५६–१७०
८.	आचार्य स्थूलभद्र	१७०–२१५
९.	आचार्य महागिरि	२१५–२४५
१०.	आचार्य सुहस्तीगिरि	२४५–२९१
११.	आचार्य गुणसुन्दरसूरि	२९१–३३५
१२.	आचार्य श्यामाचार्य	३३५–३७६
१३.	आचार्य स्कंदिल	३७६–४१४
१४.	आचार्य रेवतिमित्र	४१४–४५०
१५.	आचार्य धर्मसूरि	४५०–४९५
१६.	आचार्य भद्रगुप्तसूरि	४९५–५३३
१७.	आचार्य श्रीगुप्तगिरि	५३३–५४८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८.	आचार्य वज्रस्वामी	५४८–५८४
१९.	आचार्य आर्यरक्षित	५८४–५९७
२०.	आचार्य दुर्बलिकापुष्यमित्र	५९७–६१७
२१.	आचार्य वज्रसेनसूरि	६१७–६२०
२२.	आचार्य नागहस्ती	६२०–६८९
२३.	आचार्य रेवतीमित्र	६८९–७४८
२४.	आचार्य सिंहसूरि	७४८–८२६
२५.	आचार्य नागार्जुनसूरि	८२६–९०४
२६.	आचार्य भूतदिन्नसूरि	९०४–९८३
२७.	आचार्य कालिकसूरि (चतुर्थ)	९८३–९९४
२८.	आचार्य सत्यमित्र	९९४–१०००
२९.	आचार्य हरिल्ल	१०००–१०५५
३०.	आचार्य जिनभद्रगणी-क्षमाश्रमण	१०५५–१११५
३१.	आचार्य उमास्वातिसूरि	१११५–११९०
३२.	आचार्य पुष्यमित्र	११९०–१२५०
३३.	आचार्य संभूति	१२५०–१३००
३४.	आचार्य माठरसंभूति	१३००–१३६०
३५.	आचार्य धर्मऋषि	१३६०–१४००
३६.	आचार्य ज्येष्ठांगगणी	१४००–१४७१
३७.	आचार्य फल्गुमित्र	१४७१–१५२०
३८.	आचार्य धर्मघोष	१५२०–१५९८

वल्लभी युगप्रधान पट्टावलि

१.	आचार्य सुधर्मास्वामी	(शासन-समय) २० वर्ष
२.	आचार्य जम्बूस्वामी	४४ ,,
३.	आचार्य प्रभवस्वामी	११ ,,
४.	आचार्य शय्यंभव	२३ ,,
५.	आचार्य यशोभद्र	५० ,,
६.	आचार्य संभूतिविजय	८ ,,
७.	आचार्य भद्रबाहु	१४ ,,
८.	आचार्य स्थूलभद्र	४६ ,,
९.	आचार्य महागिरि	३० ,,
१०.	आचार्य सुहस्ती	४५ ,,
११.	आचार्य गुणसुन्दर	४४ ,,
१२.	आचार्य कालकाचार्य	४१ ,,
१३.	आचार्य स्कन्दिलाचार्य	३८ ,,
१४.	आचार्य रेवतिमित्र	३६ ,,
१५.	आचार्य मंगु	२० ,,
१६.	आचार्य धर्म	२४ ,,
१७.	आचार्य भद्रगुप्त	४१ ,,
१८.	आचार्य वज्रसेन	३६ ,,
१९.	आचार्य रक्षित	१३ ,,
२०.	आचार्य पुष्यमित्र	२० ,,
२१.	आचार्य वज्रसेन	३ ,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२.	आचार्य नागहस्ती	६९ वर्ष
२३.	आचार्य रेवतिमित्र	५९ ,,
२४.	आचार्य सिंहसूरि	७८ ,,
२५.	आचार्य नागार्जुन	७८ ,,
२६.	आचार्य भूतदिन्न	७९ ,,
२८.	आचार्य कालक	११ ,,

माथुरी युगप्रधान पट्टावलि

१.	आचार्य सुधर्मास्वामी	२.	आचार्य जम्बूस्वामी
३.	आचार्य प्रभवस्वामी	४.	आचार्य शय्यंभव
५.	आचार्य यशोभद्र	६.	आचार्य सम्भूतिविजय
७.	आचार्य भद्रबाहु	८.	आचार्य स्थूलभद्र
९.	आचार्य महागिरि	१०.	आचार्य सुहस्ती
११.	आचार्य बलिस्सह	१२.	आचार्य स्वाति
१३.	आचार्य श्यामाचार्य	१४.	आचार्य सांडिल्य
१५.	आचार्य समुद्र	१६.	आचार्य मंगु
१७.	आचार्य आर्यधर्म	१८.	आचार्य भद्रगुप्त
१९.	आचार्य वज्र	२०.	आचार्य रक्षित
२१.	आचार्य आनन्दिल	२२.	आचार्य नागहस्ती
२३.	आचार्य रेवतिनक्षत्र	२४.	आचार्य ब्रह्मदीपकसिंह
२५.	आचार्य स्कन्दिलाचार्य	२६.	आचार्य हिमवन्त
२७.	आचार्य नागार्जुन	२८.	आचार्य गोविन्द
२९.	आचार्य भूतदिन्न	३०.	आचार्य लौहित्य
३१.	आचार्य हृष्यगणी	३२.	आचार्य देवर्द्धिगणी

(१३) **आर्य इन्द्रदिन्न**—प्रस्तुत आचार्य परम्परा में आचार्य इन्द्रदिन्न (इन्द्रदत्त) युगप्रभावक आचार्य थे। आपके लघु गुरुभ्राता प्रियग्रन्थ भी युगप्रभावक व्यक्ति थे। आपने हर्षपुर में होने वाले अजमेध यज्ञ का निवारण किया था और हिंसाधर्मी ब्राह्मण विज्ञों को अहिंसा धर्म का पाठ पढ़ाया था। आपने कर्नाटक में धर्म का प्रचार किया।

आर्य शान्तिश्रेणिक से उच्चानागर शाखा का प्रादुर्भाव हुआ। प्रस्तुत शाखा में प्रतिभा मूर्ति आचार्य उमास्वाति हुए जिन्होंने सर्वप्रथम दर्शन-शैली से तत्त्वार्थसूत्र का निर्माण किया। आपके ही समय में कुछ आगे पीछे आर्य कालक, आर्य खपुटाचार्य, इन्द्रदेव, श्रमणसिंह, वृद्धिवादी, सिद्धसेन आदि आचार्य हुए।

(१४) **आर्य कालक**—आर्य कालक के नाम से चार आचार्य हुए हैं। प्रथम कालक जिनका अपर नाम श्यामाचार्य भी है और जिन्होंने प्रज्ञापना सूत्र का निर्माण किया, वे द्रव्यानुयोग के महान ज्ञाता थे। अनुश्रुति है कि शक्रेन्द्र ने एक बार भगवान सीमन्धर स्वामी से निगोद पर गम्भीर विवेचन सुना। उन्होंने यह जिज्ञासा व्यक्त की कि क्या भरत क्षेत्र में कोई इस प्रकार की व्याख्या कर सकता है। भगवान ने आर्य कालक का नाम बताया। वे आचार्य कालक के पास आये। जैसा भगवान ने कहा था वैसा ही वर्णन सुनकर अत्यन्त प्रमुदित हुए। आपका जन्म वीर सं० २८० में हुआ। वीर सं० ३०० में दीक्षा ली। ३२५ में युगप्रधानाचार्य पद पर आसीन हुए और ३७६ में उनका स्वर्गवास हुआ।

द्वितीय आचार्य कालक भी इन्हीं के सन्निकटवर्ती हैं। ये धारानगरी के निवासी थे। इनके पिता का नाम राजा वीरसिंह और माता का नाम सुरसुन्दरी था। इनकी लघु बहन का नाम सरस्वती था जो अत्यन्त रूपवती थी। दोनों ने ही गुणाकरसूरि के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। साध्वी सरस्वती के रूप पर मुग्ध होकर उज्जयिनी के राजा गर्दभिल्ल ने उसका अपहरण किया। आचार्य कालक को जब यह ज्ञात हुआ तो वे अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उन्होंने शक राजाओं से मिलकर गर्दभिल्ल का साम्राज्य नष्ट कर दिया। आचार्य कालक सिन्धु सरिता को पार कर ईरान तथा बर्मा, सुमात्रा भी गये थे। एक बार आचार्य का वर्षावास दक्षिण के प्रतिष्ठानपुर में था। वहाँ का राजा सातवाहन जैनधर्मावलम्बी था। उस राज्य में भाद्रपद शुक्ला पंचमी को इन्द्रपर्व मनाया जाता था, जिसमें राजा से लेकर रंक तक सभी अनिवार्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूप से सम्मिलित होते थे। राजा ने आचार्य कालक को निवेदन किया कि मुझे तो महापर्व संवत्सरी की आराधना करनी है। अतः संवत्सरी महापर्व छठ को मनाया जाय तो अधिक श्रेयस्कर है। आचार्य ने कहा—उस दिन का उल्लंघन कदापि नहीं किया जा सकता। राजा के आग्रह से आचार्य ने कारणवशात् चतुर्थी को सम्वत्सरी महापर्व मनाया।[२१] आचार्य ने अपवादरूप से चतुर्थी को सम्वत्सरी पर्व की आराधना की थी न कि उत्सर्ग-सामान्य स्थिति के रूप में।

(१५) **आर्य सिंहगिरि**—आर्य सिंहगिरि कौशिक गोत्रीय ब्राह्मण थे। जातिस्मरणज्ञान सम्पन्न थे। उनके मुख्य चार शिष्य थे—आर्य समित, आर्य धनगिरि, आर्य वज्रस्वामी और आर्य अर्हद्दत्त।

आर्य समित का जन्म अवन्ती देश के तुम्बवन ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम धनपाल था। ये जाति से वैश्य थे। उनकी बहन का नाम सुनन्दा था। उसका पाणिग्रहण तुम्बवन के धनगिरि के साथ सम्पन्न हुआ था। आर्य समित योगनिष्ठ और महान तपस्वी थे। कहा जाता है कि आभीर देश के अचलपुर ग्राम में इन्होंने कृष्णा और पूर्णा सरिताओं को योगबल से पार किया और ब्रह्मद्वीप पहुँचे। वहाँ पाँच सौ तापसों को अपने चमत्कार से चमत्कृत कर अपना शिष्य बनाया।

(१६) **आर्य वज्रस्वामी**—आर्य समित की बहिन का विवाह इब्भपुत्र धनगिरि के साथ हुआ था।[२२] धनगिरि धर्मपरायण व्यक्ति थे। जब उनके सामने धनपाल की ओर से विवाह का प्रस्ताव आया तब उन्होंने उसे अस्वीकार करते हुए कहा—मैं विवाह नहीं करूँगा, संयम लूँगा। किन्तु धनपाल ने उनका विवाह कर दिया। विवाह हो जाने पर भी उनका मन संसार में न रमा। अपनी पत्नी को गर्भवती छोड़कर ही उन्होंने आर्य सिंहगिरि के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। जब बच्चे का जन्म हुआ तब उसने पिता की दीक्षा की बात सुनी, सुनते ही उसे जातिस्मरण हुआ। माता के मोह को कम करने के लिए वह रात-दिन रोने लगा। एक दिन मुनि धनगिरि और समित भिक्षा के लिए जा रहे थे जब आचार्य सिंहगिरि ने शुभ लक्षण देखकर शिष्यों को कहा जो भी भिक्षा में सचित्त और अचित्त मिल जाय उसे ले लेना। दोनों मुनि भिक्षा के लिए सुनन्दा के यहाँ पहुँचे। सुनन्दा बच्चे से ऊब गयी थी। ज्यों ही आर्य धनगिरि ने भिक्षा के लिए पात्र रखा उसने आवेश में आकर बालक को पात्र में डाल दिया और बोली—आप तो चले गये और पीछे इसे छोड़ दिया। रो-रो कर इसने परेशान कर दिया है। इसे भी अपने साथ ले जाइये। धनगिरि ने उसे समझाने का प्रयास किया, किन्तु वह न समझी। धनगिरि ने छह मास के बालक को ले लिया, गुरु को सौंपा; अतिभार होने से गुरु ने बच्चे का नाम वज्र रखा।[२३] पालन-पोषण हेतु गृहस्थ को दे दिया गया। श्राविका के साथ वह साध्वियों के उपाश्रय में जाता, और निरन्तर स्वाध्याय सुनने से उसे ग्यारह अंग कण्ठस्थ हो गये। जब बच्चा तीन वर्ष का हुआ उसकी माता ने बच्चे को लेने के लिए राजसभा में विवाद किया। माता ने बालक को अत्यधिक प्रलोभन दिखाये, किन्तु बालक उधर आकृष्ट नहीं हुआ और धनगिरि के पास जाकर रजोहरण उठा लिया।

जब बालक आठ वर्ष का हुआ तब धनगिरि ने उसे दीक्षा दी, वह वज्रमुनि के नाम से प्रसिद्ध हुए। जृंभक देवों ने अवन्ती में उनकी आहार-शुद्धि की परीक्षा ली। उस परीक्षा में वे पूर्ण रूप से खरे उतरे। देवताओं ने लघुवय में ही आपको वैक्रिय-लब्धि और आकाशगामिनी विद्या दी।[२४] एक बार उत्तर भारत में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। उस समय विद्या के बल से आप श्रमणसंघ को कलिंग प्रदेश में ले गये। पाटलीपुत्र के इब्भश्रेष्ठि धनदेव की पुत्री रुक्मिणी, आपके रूप पर मुग्ध हो गयी। धनश्रेष्ठी ने पुत्री के साथ करोड़ों की सम्पत्ति दहेज में देने का प्रस्ताव किया। पर आप कनक और कान्ता के मोह में उलझे नहीं, किन्तु रुक्मिणी को प्रतिबोध देकर प्रव्रज्या प्रदान की।

कहा जाता है एक बार वज्रस्वामी को कफ की व्याधि हो गयी। उन्होंने एक सोंठ का टुकड़ा भोजन के पश्चात् ग्रहण करने हेतु, कान में डाल रखा था। पर उसे लेना भूल गये। सान्ध्य प्रतिक्रमण के समय वन्दन करते हेतु वे नीचे झुके तो वह सौंठ का टुकड़ा गिर पड़ा। अपना अन्तिम समय सन्निकट समझकर आपने वज्रसेन से कहा—द्वादशवर्षीय भयंकर दुष्काल पड़ेगा अतः साधु-सन्तों के साथ तुम सौराष्ट्र-कोंकण प्रदेश में जाओ और मैं रथावर्त पर्वत पर अनशन करने जाता हूँ। जिस दिन तुम्हें लक्ष मूल्य वाले चावल में से भिक्षा प्राप्त हो उसके दूसरे दिन सुकाल होगा। ऐसा कहकर आचार्य संथारा करने हेतु चल दिये।

वज्रस्वामी का जन्म वीर निर्वाण सं० ४९६ में, दीक्षा ५०४ में, आचार्य पद ५३६ में तथा ५८४ में आप स्वर्गस्थ हुए।

वज्रसेन—आर्य वज्रसेन के समय भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। निर्दोष भिक्षा मिलना असंभव हो गया जिसके कारण सात सौ चौरासी श्रमण अनशन कर परलोकवासी हुए। सभी क्षुधा से छटपटाने लगे। जिनदास श्रेष्ठि ने एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लाख दीनार से एक अंजलि अन्न मोल लिया और दलिया में विष मिलाकर समस्त परिवार के साथ खाने की तैयारी में था। उस समय एक मुनि उसके यहाँ गोचरी के लिए पधारे। सभी स्थिति समझकर गुरुदेव ने निवेदन किया तब आर्य वज्रसेन ने वज्रस्वामी के कहने से सुभिक्ष की घोषणा की और सबके प्राणों की रक्षा की। दूसरे दिन अन्न से परिपूर्ण जहाज आ गये। जिनदास ने वह अन्न लेकर गरीबों को वितरण कर दिया। कुछ समय के पश्चात् वर्षा होने से सर्वत्र आनन्द की उर्मियाँ उछलने लगीं। जिनदास ने अपनी विराट संपत्ति को जन-कल्याण के लिए न्योच्छावर कर अपने नागेन्द्र, चन्द्र, निवृत्ति, और विद्याधर आदि पुत्रों के साथ दीक्षा ग्रहण की। (देखिए कल्पसूत्र)। दुष्काल के समाप्त होने पर आर्य वज्रसेन ने श्रमणसंघ को पुनः एकता के सूत्र में पिरोया। इस दुष्काल में अनेक श्रमणों का स्वर्गवास हो जाने से कई वंश, कुल और गण विच्छेद हो गये।

आर्यरक्षित—आर्य वज्रसेन के ही समय में आगमवेत्ता आर्यरक्षित हुए। उनकी जन्मभूमि दशपुर थी। पिता का नाम रुद्रसोम था। जब आप काशी से गंभीर अध्ययन कर लौटे तब माता बहुत प्रसन्न हुई। माता की प्रबल प्रेरणा से दृष्टिवाद का अध्ययन करने के लिए दशपुर के इसुवन में विराजित आचार्य तोसलीपुत्र के पास गये और श्रमण बने। तोसलीपुत्र से आगमों का अध्ययन किया। उसके पश्चात् दृष्टिवाद का अध्ययन करने हेतु आचार्य वज्रस्वामी के पास पहुँचे। साढ़े नौ पूर्व तक अध्ययन किया। आपने अनुयोगद्वार सूत्र की रचना की और आगमों को द्रव्यानुयोग, चरण-करणानुयोग, गणितानुयोग और धर्मकथानुयोग के रूप में विभक्त किया। आपके समय तक प्रत्येक आगम पाठ की द्रव्यानुयोग आदि के रूप में चार-चार व्याख्याएँ की जाती थीं। आपने श्रुतधरों की स्मरणशक्ति के दौर्बल्य को देखकर जिन पाठों से जो अनुयोग स्पष्ट रूप से प्रतिभासित होता था उस प्रधान अनुयोग को रखकर शेष अन्य गौण अर्थों का प्रचलन बन्द कर दिया। जैसे—ग्यारह अंगों—महाकल्पसूत्र और छेदसूत्रों का समावेश चरणकरणानुयोग में किया गया, ऋषिभासितों का धर्मकथानुयोग में, सूर्यप्रज्ञप्ति आदि का गणितानुयोग में और दृष्टिवाद का समावेश द्रव्यानुयोग में किया गया।[२] इस प्रकार जब अनुयोगों का पार्थक्य किया गया तब से नयावतार भी अनावश्यक हो गया।[१६] प्रस्तुत कार्य द्वादशवर्षीय दुष्काल के पश्चात् दशपुर में किया गया। इतिहासकारों का मत है कि यह आगम-वाचना वीर सं० ५९२ के लगभग हुई। इस आगम वाचना में वाचनाचार्य आर्य नंदिल, युग-प्रधानाचार्य आर्यरक्षित और गणाचार्य वज्रसेन आदि उपस्थित थे। विद्वानों का यह भी मानना है कि आगम साहित्य में उत्तरकालीन महत्त्वपूर्ण घटनाओं का जो चित्रण हुआ है उसका श्रेय भी आर्यरक्षित को है। वीर सं० ५९७ में आर्यरक्षित स्वर्गस्थ हुए। उनके उत्तराधिकारी दुर्बलिकापुष्यमित्र हुए।

आर्यरथस्वामी—ये वज्रस्वामी के द्वितीय पट्टधर थे। आप वसिष्ठ गोत्रीय थे और बड़े ही प्रभावशाली थे। आपका अपर नाम जयन्त भी था जिससे जयन्तिशाखा का प्रादुर्भाव हुआ।

आर्यधर्म के आर्यस्कंदिल और आर्यजम्बू ये दो शिष्यरत्न थे। स्कंदिल की जन्मभूमि मथुरा थी। गृहस्थाश्रम में आपका नाम सोमरथ था। आर्य सिंह के उपदेश को सुनकर आर्य धर्म के सन्निकट प्रव्रज्या ग्रहण की। ब्रह्मद्वीपिका शाखा के वाचानाचार्य आर्य सिंहसूरि से पूर्वों का अध्ययन किया। वाचक पद प्राप्त कर युगप्रधानाचार्य बने।

इतिहास की दृष्टि से उस समय भारत की स्थिति विषम थी। हूणों और गुप्तों में युद्ध हुआ था। बारह वर्ष के दुष्काल से मानव-समाज जर्जरित हो चुका था।[१७] जैन, बौद्ध और वैदिक धर्म के अनुयायी परस्पर खण्डन-मण्डन में लगे हुए थे; आदि अनेक कारणों से श्रुतधरों की संख्या कम होती जा रही थी। उस विकट वेला में आर्य स्कंदिल ने श्रुत की सुरक्षा के लिए मथुरा में उत्तरापथ के मुनियों का एक सम्मेलन बुलवाया[१८] और आगमों का पुस्तकों के रूप में लेखन किया। यह सम्मेलन वीर सं० ८२७ से ८४० के आसपास हुआ था। उधर आचार्य नागार्जुन ने भी वल्लभी (सौराष्ट्र) में दक्षिणापथ के मुनियों का सम्मेलन बुलाया। आगमों का लेखन व संकलन किया। ये सम्मेलन दूर-दूर होने से स्थविर एक दूसरे के विचारों से अवगत न हो सके, अतः पाठों में कुछ स्थलों पर भेद हो गये।

आचार्य देवर्द्धिगणी—ये जैन आगम साहित्य के प्रकाशमान नक्षत्र हैं। वर्तमान में जो आगम साहित्य उपलब्ध है उसका सम्पूर्ण श्रेय देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण को है। आपका जन्म वेरावल (सौराष्ट्र) में हुआ था। आपके पिता का नाम कामर्द्धि और माता का नाम कलावती था। कहा जाता है भगवान महावीर के समय शक्रेन्द्र का सेनापति हरिणैगमेषी देव था। वही आयु पूर्ण कर देवर्द्धिगणी बना।

आपने उपकेश गच्छीय आर्य देवगुप्त के पास एक पूर्वतक अर्थ सहित और दूसरे पूर्व का मूल पढ़ा था। आप अन्तिम पूर्वधर थे। आपके बाद कोई भी पूर्वधर नहीं हुआ। आपने वीर सं० ९८० के आस-पास वल्लभी (सौराष्ट्र) में एक विराट् श्रमण सम्मेलन बुलवाया जिसका नेतृत्व आपने किया। उस सम्मेलन में आगम पुस्तकारूढ़ किये गये। इस आगम वाचना में नागार्जुन की वाचना के गम्भीर अभ्यासी चतुर्थ कालकाचार्य विद्यमान थे। जिन्होंने वीर सं० ९९३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में आनन्दपुर में राजा ध्रुवसेन के सामने श्रीसंघ को कल्पसूत्र सुनाया था। पूर्व माथुरी वाचना और नागार्जुन वाचना में जिन-जिन विषयों में मतभेद हो गया था उन भेदों का देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण ने समन्वय किया। जिन पाठों में समन्वय न हो सका उन स्थलों पर स्कंदिलाचार्य के पाठों को प्रमुखता देकर नागार्जुन के पाठों को पाठान्तर के रूप में स्थान दिया। टीकाकारों ने '**नागार्जुनीयास्तु पठन्ति**' के रूप में उनका उल्लेख किया है।

देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के पश्चात् पूर्व-ज्ञान-परम्परा विच्छिन्न हो गयी।[२९] पुराने गच्छ लुप्त हो रहे थे, नित्य नये गच्छ अस्तित्व में आ रहे थे। अतः आचार्यों के नामों की विभिन्न परम्पराएँ उपलब्ध होती हैं। उनमें से कई विशृंखलित हो गयी हैं।

यह एक ऐतिहासिक सत्य-तथ्य है कि आर्य सुहस्ती के समय कुछ शिथिलाचार प्रारम्भ हुआ था। वे स्वयं सम्राट सम्प्रति के आचार्य बनकर कुछ सुविधाएँ अपनाने लगे थे, किन्तु आर्य महागिरि के संकेत से वे पुनः सँभल गये। लेकिन उनके सम्भलने पर भी एक शिथिल परम्परा का प्रारम्भ हो गया।

वीर निर्वाण की नवीं शताब्दी (८५०) में चैत्यवास की संस्थापना हुई। कुछ शिथिलाचारी श्रमण उग्र विहार यात्रा को छोड़कर मन्दिरों के परिपार्श्व में रहने लगे। वीर निर्वाण की दसवीं शताब्दी तक इनका प्रभुत्त्व बढ़ नहीं सका। देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के स्वर्गवास होने पर इनका समुदाय शक्तिशाली हो गया। विद्याबल और राज्य बल मिलने से उन्होंने शुद्धाचार्यों का उपहास किया। 'सम्बोध प्रकरण' नामक ग्रन्थ में आचार्य हरिभद्र ने उन चैत्य-वासियों के आचार-विचारों का सजीव वर्णन किया है। आगम अष्टोत्तरी में अभयदेवसूरि ने लिखा है कि देवर्द्धिगणी के पश्चात् जैन शासन की वास्तविक परम्परा का लोप हो गया।[३०] चैत्यवास के पहले गण, कुल और शाखाओं का प्राचुर्य होने पर भी उनमें किसी भी प्रकार का विग्रह या अपने गण का अहंकार नहीं था। जो अनेक गण थे, वे व्यवस्था की दृष्टि से थे। विभिन्न कारणों से गणों के नाम बदलते रहे। भगवान महावीर के प्रधान शिष्य सुधर्मा के नाम से भी सौधर्म गण हुआ। चैत्यवासी शाखा के उद्भव के साथ एक पक्ष संविघ्नविधिमार्ग या सुविहित मार्ग कहलाया और दूसरा पक्ष चैत्यवासी।

आचार्य देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के पश्चात् की पट्ट-परम्परा में एकरूपता न होने के कारण हम यहाँ पर कुछ विशिष्ट प्रभावशाली मुनियों का ही परिचय दे रहे हैं।

आचार्य सिद्धसेन दिवाकर— आचार्य सिद्धसेन दिवाकर जैन परम्परा में तर्कविद्या और तर्कप्रधान संस्कृत वाङ्मय के आद्य निर्माता हैं। वे प्रतिभा मूर्ति हैं। जिन्होंने उनका प्राकृत ग्रन्थ सन्मतितर्क और संस्कृत द्वात्रिंशिकाएँ देखी हैं वे उनकी प्रतिभा की तेजस्विता से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। उन्होंने चर्वित चर्वण नहीं किया। किन्तु सन्मतितर्क जैसे मौलिक ग्रन्थों का सृजन किया। सन्मतितर्क जैन दृष्टि से और जैन मन्तव्यों को तर्क-शैली से स्पष्ट करने तथा स्थापित करने वाला जैन साहित्य का सर्वप्रथम ग्रन्थ है। इसमें तीन काण्ड हैं। प्रथम काण्ड में द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दृष्टि का सामान्य विचार है। द्वितीय काण्ड में ज्ञान और दर्शन पर सुन्दर विश्लेषण है। तृतीय काण्ड में गुण और पर्याय, अनेकान्त दृष्टि और तर्क के विषय में अच्छा प्रकाश डाला गया है।

आचार्य सिद्धसेन ने बत्तीस बत्तीसियाँ भी रची थीं। उनमें से इक्कीस बत्तीसियाँ वर्तमान में उपलब्ध हैं जो संस्कृत भाषा में हैं। प्रथम की पाँच बत्तीसियों में श्रमण भगवान महावीर की स्तुति की गयी है और ग्यारहवीं बत्तीसी में पराक्रमी राजा की स्तुति की गयी है। वे आद्य स्तुतिकार हैं। उन स्तुतियों को पढ़कर अश्वघोष के समकालीन बौद्ध स्तुतिकार मातृचेटरचित अध्यर्थ शतक और आर्यदेवरचित चतुश्शतक की स्मृति हो आती है। आचार्य हेमचन्द्र की दोनों बत्तीसियाँ तथा आचार्य समन्तभद्र का स्वयंभू स्तोत्र और युक्त्यनुशासन नामक दार्शनिक स्तुतियाँ भी आचार्य सिद्धसेन दिवाकर की स्तुतियों का अनुकरण हैं। सिद्धसेन वाद-विद्या के पारंगत पण्डित थे। उन्होंने सातवीं वादोपनिषद् बत्तीसी में वाद के सभी नियम-उपनियमों का वर्णन कर विजय पाने का उपाय भी बताया है। आठवीं बत्तीसी में वाद-विद्या को कल्याणमार्ग न बताने का प्रयास भी किया है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कल्याण का मार्ग अन्य है, वादी का मार्ग अन्य है। क्योंकि किसी भी मुनि ने वाग्युद्ध को शिव का उपाय नहीं बताया है। उनकी बत्तीसियों में न्याय, वैशेषिक, सांख्य, बौद्ध, आजीवक और जैनदर्शन का वर्णन है, किन्तु चार्वाक एवं मीमांसक दर्शन का वर्णन नहीं है। सम्भव है कि जो बत्तीसियाँ उपलब्ध नहीं हैं उनमें यह वर्णन होगा। जैनदर्शन का वर्णन अनेक बत्तीसियों में किया है। वे उपनिषद्, गीता, वेदान्त के प्रकाण्ड पण्डित थे।

जैसे दिङ्नाग ने बौद्धदर्शनमान्य विज्ञानवाद को सिद्ध करने के लिए पूर्व परम्परा में किंचित् परिवर्तन करके बौद्धप्रमाणशास्त्र को व्यवस्थित रूप दिया उसी प्रकार सिद्धसेन दिवाकर ने भी पूर्व परम्परा का सर्वथा अनुकरण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न करके अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से न्यायावतार की रचना की। इस लघु कृति में प्रमाण, प्रमाता, प्रमेय और प्रमिति इन चार तत्त्वों की जैनदर्शन सम्मत व्याख्या करने का अनूठा प्रयास किया है। उन्होंने प्रमाण और उनके भेद-प्रभेदों का लक्षण किया है। अनुमान के सम्बन्ध में उनके हेत्वादि सभी अंग-प्रत्यंगों की संक्षेप में मार्मिक व्याख्या की है। प्रमाण के साथ नयों का लक्षण और विषय बताकर मनीषियों का ध्यान उस ओर आकर्षित किया। स्वमत के निरूपण के साथ ही परमत का निराकरण भी किया। इनके गुरु का नाम वृद्धवादी था। इनका अपर नाम कुमुदचन्द्र भी था। उज्जयिनी के महाकाल के मन्दिर में चमत्कार दिखाकर राजा को प्रतिबोध दिया। ये महान तेजस्वी आचार्य थे। वीर निर्वाण सं० ४०० के आसपास इनका अस्तित्व माना जाता है और ४८० में प्रतिष्ठानपुर में इनका स्वर्गवास माना जाता है।

जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण—इनकी जन्मस्थली माता-पिता आदि के सम्बन्ध में कुछ भी सामग्री प्राप्त नहीं होती। १५ वीं १६ वीं शताब्दी में निर्मित पट्टावलियों में इन्हें आचार्य हरिभद्र का पट्टधर लिखा है; जबकि आचार्य हरिभद्र जिनभद्र से सौ वर्ष के पश्चात् हुए हैं। ये निवृत्तिकुल के थे। वल्लभी के जैन भण्डार में शक सं० ५३१ की लिखी हुई विशेषावश्यकभाष्य की एक प्रति मिली है जिससे स्पष्ट है कि उनका सम्बन्ध वल्लभी के साथ अवश्य रहा होगा। विविधतीर्थकल्प से ज्ञात होता है उन्होंने मथुरा में महानिशीथसूत्र का उद्धार किया था। वाचक, वाचनाचार्य, क्षमाश्रमण, आदि शब्द एक ही अर्थ के द्योतक हैं। आचार्य जिनभद्र की नौ रचनाएँ प्राप्त होती हैं।

१. विशेषावश्यकभाष्य—प्राकृत पद्य में
२. विशेषावश्यकभाष्य स्वोपज्ञवृत्ति—अपूर्ण, संस्कृत गद्य
३. बृहत्संग्रहणी—प्राकृत पद्य
४. बृहत्क्षेत्रसमास—प्राकृत पद्य
५. विशेषणवती—प्राकृत पद्य
६. जीतकल्प—प्राकृत पद्य
७. जीतकल्पभाष्य—प्राकृत पद्य
८. अनुयोगद्वारचूर्णि—प्राकृत पद्य
९. ध्यानशतक—प्राकृत पद्य (इस सम्बन्ध में एकमत नहीं है)।

विशेषावश्यकभाष्य आचार्य जिनभद्र की अन्तिम रचना है। इन्होंने इस पर सोपज्ञवृत्ति लिखना भी प्रारम्भ किया था, किन्तु पूर्ण होने से पहले ही उनका आयुष्य पूर्ण हो गया जिससे वह अपूर्ण रह गयी। विज्ञजन जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण का उत्तर काल विक्रम संवत् ६५० से ६६० के आसपास मानते हैं।

जिनदासगणी महत्तर—चूर्णि साहित्य के निर्माताओं में इनका मूर्धन्य स्थान है। इनके जीवनवृत्त के सम्बन्ध में विशेष सामग्री उपलब्ध नहीं है। नन्दीविशेषचूर्णि में इनके विद्यागुरु का नाम प्रद्युम्न क्षमाश्रमण आया है। उत्तराध्ययनचूर्णि में इनके सद्गुरुदेव का नाम वाणिज्य कुलीन कोटीकगणीय वज्रशाखीय गोपालगणी महत्तर आया है। विज्ञों का मानना है कि ये जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण के बाद और आचार्य हरिभद्र से पहले हुए हैं, क्योंकि भाष्य की अनेक गाथाओं का उपयोग चूर्णि में हुआ है और आचार्य हरिभद्र ने अपनी वृत्तियों में चूर्णियों का उपयोग किया है। इनका समय वि० सं० ६५० से ७५० के मध्य होना चाहिए। इनकी निम्न चूर्णियाँ मानी जाती हैं—

१. निशीथविशेषचूर्णि
२. नन्दीचूर्णि
३. अनुयोगद्वारचूर्णि
४. दशवैकालिकचूर्णि
५. उत्तराध्ययनचूर्णि
६. आवश्यकचूर्णि
७. सूत्रकृतांगचूर्णि

भाषा की दृष्टि से इनकी चूर्णियाँ संस्कृत मिश्रित प्राकृत भाषा में हैं। किन्तु संस्कृत कम और प्राकृत अधिक है। आवश्यकचूर्णि की भाषा प्राकृत है। भाषा सरल और सुबोध है। इन चूर्णियों में सांस्कृतिक, राजनीतिक और सामाजिक सामग्री भरी पड़ी है।[११]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य हरिभद्र—हरिभद्र नाम के कई आचार्य हुए हैं। पुरातत्त्ववेत्ता जिनविजयजी, डा० हर्मन जेकोबी ने याकिनी महत्तरासूनु हरिभद्र को प्रथम हरिभद्र माना है। वे उनका समय सन् ७०० से ७७० (वि० सं. ७५७ से ८२७) मानते हैं। उनका जन्म चित्तौड़ में हुआ। वे जाति के ब्राह्मण थे। जितारि राजा के राज पुरोहित थे। उनकी प्रतिज्ञा थी कि जो मुझे शास्त्रार्थ में पराजित करेगा मैं उसका शिष्य बन जाऊँगा। याकिनीमहत्तरा स्वाध्याय कर रही थीं। उनके कानों में यह गाथा गिरी :—

"चक्कीदुगं हरिपणगं पणगं चक्केण केसवो चक्की।
केसव चक्की केसव दु चक्की केसव चक्की य॥"

उन्होंने चिन्तन किया किन्तु अर्थ समझ में नहीं आया। अतः प्रतिज्ञा के अनुसार वे शिष्य बनने के लिए तत्पर हो गये और साध्वी महत्तरा की आज्ञा से वे आचार्य जिनभट्ट के शिष्य हुए। प्रभावकचरित्र के अनुसार जिनभट्ट उनके गच्छपति गुरु थे, जिनदत्त दीक्षागुरु थे याकिनी महत्तरा धर्मजननी थी, उनका कुल विद्याधर था, गच्छ एवं सम्प्रदाय श्वेताम्बर था। कहा जाता है उन्होंने चौदह सौ चव्वालीस ग्रंथ लिखे किन्तु अभी तक तिहत्तर ग्रंथ मिले हैं। आपने सर्वप्रथम आगम ग्रंथों पर संस्कृत भाषा में टीकाएँ लिखीं। उसके पूर्व निर्युक्तियाँ, भाष्य और चूर्णियाँ विद्यमान थे। आपने आवश्यक, दशवैकालिक, जीवाभिगम, प्रज्ञापना, नन्दी, अनुयोगद्वार और पिण्डनिर्युक्ति पर टीकाएँ लिखीं। पिण्डनिर्युक्ति की अपूर्ण टीका वीराचार्य ने पूर्ण की।

आचार्य हरिभद्र की महान विशेषता यह है कि जितनी सफलता के साथ उन्होंने जैनदर्शन पर लिखा उतनी ही सफलता से उन्होंने वैदिक और बौद्ध दर्शन पर भी लिखा। साम्प्रदायिक अभिनिवेश का उनमें अभाव था। खण्डन-मण्डन के समय में भी वे मधुर भाषा का ही प्रयोग करते हैं। उमास्वाति, सिद्धसेन दिवाकर, जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण ने जिस प्रकरणात्मक पद्धति का प्रचलन किया था उन प्रकरणों की रचनाओं को आचार्य हरिभद्र ने व्यवस्थित रूप दिया।

बप्पभट्टसूरि—इनकी माता का नाम भट्टी और पिता का नाम ब्रह्म था। ये भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनकी स्मरणशक्ति बहुत ही तीक्ष्ण थी। एक साथ एक हजार श्लोक एक दिन में वे कंठस्थ कर लेते थे। उनके दीक्षा गुरु का नाम सिद्धसेन था। आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में इनका जन्म हुआ। कहा जाता है कि ग्यारह वर्ष की लघु वय में गुरु ने इन्हें आचार्य पद प्रदान किया। ग्वालियर के राजा को इन्होंने जैन-धर्म में दीक्षित किया। कन्नौज के राजा तथा गौडा (बंगाल) के अन्तर्गत लक्षणावति के राजा को भी आपने प्रतिबोध दिया था। पंचानवे वर्ष की आयु में आपका स्वर्गवास हो गया।

आचार्य शीलांक—इनका विशेष परिचय अनुपलब्ध है। इनका अपर नाम शीलाचार्य व तत्त्वादित्य भी था। प्रभावकचरित्र के अनुसार उन्होंने नौ अंगों पर टीकाएँ लिखी थीं, किन्तु इस समय आचारांग और सूत्रकृताङ्ग की ही टीका मिलती है। ये दोनों टीकाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। इसमें दार्शनिक चिन्तन भी है। विषय को स्पष्ट करने के लिए अन्य श्लोक व गाथाओं का उपयोग भी किया है, किन्तु उनके रचियता का नाम-निर्देश नहीं है। इनका कुल निवृत्ति था।

श्रीसिद्धर्षिसूरि—ये श्रीमाल के राज्य मंत्री श्री सुप्रभदेव के पुत्र थे। इनके गुरु का नाम दुर्गस्वामी था। इनकी अनेक रचनाएँ हैं, उसमें 'उपमितिभवप्रपंच' नामक श्रेष्ठ रचना है।

आचार्य अभयदेव—नवांगी टीकाकार आचार्य अभयदेव महान् प्रतिभासम्पन्न थे। प्रभावकचरित्र के अनुसार इनकी जन्मस्थली धारानगरी थी। वर्ण की दृष्टि से वैश्य थे। पिता का नाम महीधर और माता का नाम धनदेवी था। ये जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे। इन्होंने स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, अन्तकृतदशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण, विपाक, औपपातिक इन आगमों पर टीकाएँ लिखीं, जिनमें पाण्डित्यपूर्ण विवेचनाशक्ति सचमुच ही प्रेक्षणीय है। आगम रहस्यों को बहुत ही सरलता और सुगमता से व्यक्त किया है। इन वृत्तियों के अतिरिक्त प्रज्ञापना, पंचाशकसूत्रवृत्ति, जयतिहुअण स्तोत्र, पंचनिर्ग्रंथी, षट्कर्म, ग्रंथ-सप्तति, पर भी इन्होंने भाष्य लिखा। लगभग साठ हजार श्लोकों का निर्माण किया।

कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र—प्रभावकचरित्र के अनुसार आपका जन्म वि० सं० ११४५ कार्तिक पूर्णिमा को अहमदाबाद के सन्निकट धन्धुका ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम चाचदेव और माता का नाम पाहिनी था। गृहस्थाश्रम में उनका नाम चंगदेव था और गुरु का नाम देवचन्द्र था। देवचन्द्र ने जब चंगदेव को देखा तो बड़े

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभावित हुए और माँ से उसे प्राप्त किया। दीक्षा के पश्चात् उनका नाम सोमचन्द्र रखा गया। गम्भीर विद्वत्ता को देखकर २१ वर्ष की आयु में आचार्य पद प्रदान दिया गया और सोमचन्द्र के स्थान पर हेमचन्द्र नाम रखा गया। आपने गुर्जरनरेश सिद्धराज जयसिंह जैसे विद्यारसिक नरेश को अपनी प्रतिभा से चमत्कृत किया और उस शैव नरेश को परमार्हत बनाया। आपने शब्दानुशासन, संस्कृतद्वयाश्रय, प्राकृतद्वयाश्रय, अभिधान चिन्तामणि, अनेकार्थसंग्रह, निघण्टु, निघण्टुशेष, देशीनाममाला, काव्यानुशासन, योगशास्त्र, प्रमाणमीमांसा, आदि शताधिक, ग्रंथों की रचना की। आपने आगमिक, दार्शनिक, साहित्यिक, सामाजिक और राजनीतिक सभी विषयों पर महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिखे। वस्तुतः आप जैन जगत् के व्यास हैं।

आचार्य मलयगिरि—ये उत्कृष्ट प्रतिभा के धनी थे। इनकी टीकाओं में प्रकाड पाण्डित्य स्पष्ट रूप से झलकता है। विषय की गहनता के साथ भाषा की प्रांजलता, शैली की लालित्यता के दर्शन होते हैं। आगम साहित्य के साथ ही गणित, दर्शन और कर्मसिद्धान्त के भी ये निष्णात थे। वर्तमान में उनके बीस ग्रंथ उपलब्ध होते हैं। इनके अतिरिक्त भी उनके ग्रंथ थे। आगम के गंभीर रहस्यों को तर्कपूर्ण शैली में उपस्थित करने की अद्भुत कला इनमें थी। मुनिश्री पुण्यविजयजी के शब्दों में कहें तो व्याख्याकारों में उनका स्थान सर्वोत्कृष्ट है।

इस तरह प्रबल प्रतिभा के धनी अनेक मूर्धन्य आचार्य हुए हैं जिन्होंने विपुल साहित्य का सृजन कर सरस्वती के भण्डार को भरा है किन्तु विस्तारभय से हम उन सभी का यहाँ परिचय नहीं दे रहे हैं।

सन्दर्भ एवं सन्दर्भ-स्थल

१ विशेष परिचय के लिए देखिए लेखक का ऋषभदेव एक परिशीलनः ग्रन्थ।
२ विशेष परिचय के लिए देखिए लेखक का "भगवान अरिष्टनेमि और कर्म योगी श्रीकृष्ण" ग्रन्थ।
३ विशेष परिचय के लिए देखिए लेखक का ग्रन्थ "भगवान पार्श्व : एक समीक्षात्मक अध्ययन"।
४ विशेष परिचय के लिए देखिए लेखक का ग्रन्थ "भगवान महावीर : एक अनुशीलन"।
५ आवश्यक निर्युक्ति ६४३।
६ वही. गाथा ६४७-४८।
७ भगवती १-१-८।
८ (क) कल्प सूत्रार्थ प्रबेधिनी (ख) गणधरवाद की भूमिका, दलसुख मालवणिवा पृ० ६६।
९ भगवान महावीर : एक अनुशीलन।
१० (क) आवश्यक निर्युक्ति ६५५। (ख) आवश्यक मलयगिरि–३३९।
११ (क) कल्प सूत्र चूर्णि २०१। (ख) आवश्यक निर्युक्ति गाथा ६५८।
१२ आवश्यक निर्युक्ति ६५५।
१३ मण परमोहि पुलाए आहार खवग उवसमेकप्पे।
संजमतिग केवल सिज्झणा य जंबूम्मि वुच्छिण्णा–॥
१४ दाशाश्रुत स्कंध चूर्णि।
१५ (क) गुर्वावली–मुनिरत्न सूरि। (ख) कल्पसूत्र कल्पार्थ बोधिनी टीका पृ० २०८।
१६ आवश्यक चूर्णि-भाग २, पृ० १८७।
१७ तित्थोगालिय ८०/१/२/
१८ पट्टावली पराग : मुनि कल्याणविजय पृ० ५१।
१९ जैन परम्परा नो इतिहास भाग १. पृ० १७५-७६।
२० बृहत्कल्प भाष्य १/५० ३२७५ से ३२८९।
२१ पज्जोसमणाकप्पणिज्जुत्ती पृ० ८९।
(क) श्री निशीथ चूर्णि० उ० १०।
(ख) भरतेश्वर बाहुबलि वृत्ति।
२२ (क) आवश्यक चूर्णि प्रथम भाग—पन्ना ३९०।
(ख) आवश्यक हरिभद्रयावृत्ति टीका प्रथम भाग-पन्ना २८९।

[शेष पृष्ठ ८३ पर]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org